Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

हिंदी साहित्य में नारी चेतना

राज कुमार*

* शोध छात्र (राजनीति विज्ञान) मेरठ कॉलेज मेरठ (उ.प्र.) भारत

प्रस्तावना – भारतीय संस्कृति में नारी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। स्त्री और पुरुष ईश्वर की दो समान धर्मी कृतियां हैं। दोनों एक दूसरे की पूरक हैं। स्त्री पुरुष मिलकर जीवन की एक महत्वपूर्ण इकाई का निर्माण करते हैं। दांपत्य शब्द इसी स्थिति को पुष्ट करता है। हमारी संस्कृति में स्त्री की शक्ति की महिमा इसी बात से पुष्ट होती है कि वह न तो पुरुष की अनुगामिनी है, अपितु वह पूरक है, उसकी जीवन साथी है, सहधर्मिणी है। प्राचीन भारतीय मनीषियों ने नारी के स्थान की जितनी सुंदर अभिव्यक्ति वेदों में वर्णित की है उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। वैदिककाल में नारियों के प्रति बड़ा आदरभाव था। परिवार की प्रमुख संरचना विवाह का उद्देश्य केवल वासनापूर्ति न होकर गृहस्थ धर्म का पालन, धर्म अनुष्ठान, यज्ञ संपादन और दांपत्य जीवन द्वारा श्रेष्ठ संतान की प्राप्ति भी था। घर गृहस्थी में स्त्री की प्रधानता थी। परिवार की सभी गतिविधियों के केंद्र में स्त्री थी। कन्या में ही धन की देवी लक्ष्मी का निवास माना जाता था। वैदिक संस्कृति में स्त्री शिक्षा का भी महत्व था। उस समय पुत्र व पुत्री के पालन पोषण, शिक्षा दीक्षा आदि में कोई भेदभाव नहीं था। मैथिलीशरण गुप्त ने भी अपनी लेखनी से आर्य स्त्रियों के स्थान को पुरुष समाज में निर्धारित करते हुए माना है कि वे सदगृहस्थी की वाहक दैवीय शक्ति के समान थीं। उन्हीं के शब्दों में –

'केवल पुरूष ही थे न वे, जिनका जगत को गर्व था,
गृह देवियां भी थीं हमारी, देवियां ही सर्वथा।।'[1]

भारतीय इतिहास में रामायण, महाभारत काल के पश्चात स्त्रियों की स्थिति अत्यंत दयनीय होती गई। मुसलमान आक्रांताओं के आगमन से पर्दा प्रथा ने उनकी स्थिति को और भी विकराल बना दिया। बाल विवाह और दहेज प्रथा के कारण स्त्री की स्थिति सर्वथा अवरुद्ध हो गई। इस संबंध में कमलेश कटारिया का मानना है कि 'उन पर अनेक अनगिनत निर्योग्यताएं थोपी गईं, बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध, सती प्रथा के प्रति अनिच्छुक विधवाओं को भी जबरदस्ती चिताओं में झोंक देना, पर्दा प्रथा के कारण लड़कियों को शिक्षा से वंचित कर देना, शिक्षा और अंधविश्वासों में जकड़ी स्त्री को पुरुषों का गुलाम बना दिया जाना।'[2]

इस प्रकार तत्कालीन युग में स्त्री, पुरुष की सहधर्मिणी, सहकर्मी के रूपों से वंचित हो गई। लेकिन आधुनिक काल में स्त्री जागृति के कारण उसकी दशा में काफी सुधारात्मक परिवर्तन आया है। आज स्त्री को सृष्टि की सर्वोत्तम रचना माना जाता है। कवि जयशंकर प्रसाद ने स्त्री के प्रति अपने श्रद्धा भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है –

'नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुंदर समतल में।'[3]

आज की स्त्री अपने वजूद को महसूस करती है। एक सजग इकाई के रूप में वह तमाम यथार्थ स्थितियों से लड़ती है। वर्तमान सामाजिक परिवेश के अंतर–विरोध व असंगतियों को आज के परिप्रेक्ष में जानना चाहती है।

'यह आज समझ तो पाई हूँ,
मैं दुर्बलता में नारी हूँय
अवयव की सुंदर कोमलता,
लेकर मैं सब से हारी हूँ।'[4]

स्त्री चेतना : अर्थ व स्वरूप– चेतना मानव शरीर में उपस्थित वह आधारभूत तत्व है जिसके कारण उसे सभी प्रकार की अनुभूतियां होती हैं। व्यक्ति को स्वयं के प्रति सजग रहना मनुष्य का सर्वोत्तम दायित्व है जो उसकी चेतना का प्रथम सोपान है। डॉक्टर गणपतराम शर्मा का मानना है कि 'चेतन मन में हुए मानसिक और शारीरिक क्रिया निहित रहती हैं जिनके प्रति हम सचेत रहते हैं और उनका बड़ी सरलता से प्रत्याशी करना संभव होता है इनका प्रयोग स्वयं के प्रति जागरूक रहने और स्वयं को समझने में किया जाता है।'[5] इस प्रकार मानव मन के मन में प्रतिकूल भाव के उत्पन्न होने की दशा में अधिकारों के प्रति सचेत होना ही चेतना है। चेतना की प्रेरणा से ही मनुष्य अपने व समाज के लिए कार्य करने की ओर प्रवृत्त होता है। बृहद हिंदीकोश में चेतना से अभिप्राय होश में आना, सावधान होना, सोच समझकर ध्यान देना, विवेक से काम लेना इत्यादि अर्थ में लिया जाता है। इस प्रकार चेतना को आसपास के वातावरण को समझने, परखने तथा स्वयं को स्थापित करने की शक्ति माना जाता है। अत: चेतना मानव मन की वह शक्ति है जो मानव को आंतरिक और बाह्य अनुभूतियों का ज्ञान कराती है। संस्कृत साहित्य में चेतना, संज्ञा, बोध, समझ आदि के रूप में प्रयुक्त होती है। चेतना शब्द चित ल्यूट प्रत्यय के योग से चेतन शब्द बनता है। इस चेतन के भाव को ही चौतन्य कहा गया है। इसका अर्थ है मुख्य धारा से जुड़ाव, अथवा समझ स्थापित करना है। अत: इस प्रकार चेतना का अर्थ हुआ समाज की मुख्यधारा से जुड़ाव के साथ अपने अधिकार एवं कर्तव्य की पूर्ण समझ रखना। श्रीमद् भागवत गीता के तृतीय अध्याय में श्री कृष्ण अर्जुन को इस चेतन अथवा चेतन तत्व के अनुक्रम को इतना व्यवस्थित समझाया है और बताया है कि 'इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्य: परं मन:। मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धे: परतस्तु स:।।'3/42 (इंद्रियां श्रेष्ठ है, मन उनसे भी श्रेष्ठ है, मन से बुद्धि

अधिक श्रेष्ठ है परंतु जो तत्व बुद्धि से भी श्रेष्ठ है वही तत्व चेतन अथवा चेतना है।)[6] ऑक्सफोर्ड हिन्दी इंग्लिश शब्दकोश में चेतना को Consciousness और Intelligence माना गया है। जिसका अर्थ चेतना, चेतन, जागृत अवस्था आदि माना जाता है। अत: कहा जा सकता है कि चेतना मानव मन की वह शक्ति है जो हमें मनोजगत के सूक्ष्म भावों एवं विचारों के साथ साथ बाह्य जगत के विषयों, एवं मनो सामाजिक अनुभूतियों का ज्ञान कराती है।

हिन्दी साहित्य एवं स्त्री – भारतीय समाज में शताब्दियों से एक स्त्री का पालन पोषण, देखभाल व व्यवहार इस प्रकार से किया जाता रहा है कि वह अपने को अबला और निरीह प्राणी के अतिरिक्त कुछ सोच नहीं पाती तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह पुरुष के साए के सहारे ही आगे बढ़ना चाहती है, लेकिन आज की स्त्री अपनी चेतना के बल पर इस दुर्बलता, बेसहारापन और भीरूता से परे हटकर अपनी चेतना से सभी क्षेत्रों को चौतन्य कर रही है।

'यह आज समझ तो पाई हूँ,
मैं दुर्बलता में नारी हूँय
अवयव की सुंदर कोमलता,
लेकर मैं सब से हारी हूँ।'[7]

स्त्री चेतना का यह फैलाव समाज के संपूर्ण परिवेश से जुड़ा हुआ है। समाज में स्त्री के माता, पत्नी, बहन, पुत्री, सखी, सेविका, परिचारिका, तपस्विनी आदि अनेकानेक रूप हैं। धार्मिक चेतना की दृष्टि से वह कमला, जगदंबा, दुर्गा आदि रूपों में श्रद्धा एवं पूजनीय भाव से युक्त है तो राजनीतिक चेतना की दृष्टि से इंदिरा गांधी, प्रतिभा पाटिल बनकर कूटनीतिज्ञ तथा साहसी बनकर देश और दुनिया का नेतृत्व करने का माद्दा रखती है। डॉक्टर मुकुल रानी सिंह ने नारी का राष्ट्र के प्रति योगदान एवं नारी की योगदान से राष्ट्र के विकास का उल्लेख करते हुए माना है कि जिस राष्ट्र की नारी मानवीय भावनाओं से प्रेरित होगी, उस राष्ट्र का भावी जीवन अत्यंत सुंदर और सुखद होगा और वह राष्ट्र को मानवीय धरातल से ऊंचा कर सकती है। इस चेतना से नारी समाज में जो लहर उत्पन्न हुई उसने पूर्व समाज के विरोध के स्वर अपने में समाहित कर विलीन कर लिए। आज स्त्री चेतना का ही यह परिणाम है कि आज स्त्री जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के समान ही अपनी कुशलता एवं कर्मठता का परिचय दिया है। डॉ अर्चना शेखावत ने नारी चेतना के प्रभाव को नारी जीवन में स्वीकार करते हुए लिखा है कि, 'सामाजिक जीवन का सुदृढ़ आधार नारी के गौरव और श्रेय का भागीदार पुरूष ही बना रहा और उसने स्त्री को पीछे धकेलने की कोशिश भी की, लेकिन स्त्री चेतना ने उसे जागृतकर स्त्री की दासता का भार अपने कंधे से उतार कर सम्मान पूर्वक जीने की राह प्रदान की।' भारतीय समाज में स्त्री चेतना के फैलाव से उसका क्षेत्र अत्यंत विस्तृत एवं व्यापक हुआ है। आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से वहआत्मनिर्भर और स्वाभिमानी बनी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय स्त्री को सभी प्रकार के अधिकार दिए गए जिससे उसने चूल्हा चौका का दायरा छोड़कर अपने स्वतंत्र अस्तित्व को जीवंत किया है। यह स्त्री चेतना का ही परिणाम है कि जीवन की आपाधापी में भी स्त्री के व्यक्तित्व निर्माण में, बच्चों का लालन पालन करने में, परिवार के प्रति उत्तारदायित्व के होते हुए भी उसने अपना वजूद स्थापित किया है।

समाज सुधार के आंदोलनो, संवैधानिक सुविधाओं, शिक्षा का प्रसार प्रचार तथा लोकतंत्र में भागीदारी के कारण स्त्री चेतना में जागृति का भाव उत्पन्न हुआ है। आज वह अपने स्व के प्रति सजग है। इस प्रकार स्त्री में जहां रूढ़ियों, परंपराओं को तोड़ने के प्रति विद्रोह का भाव है, वहीं नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना का दृढ़ विश्वास भी मौजूद है। आज की स्त्री पहले की अपेक्षा वैचारिक दृष्टि से अधिक मजबूत एवं सशक्त है। इस प्रकार स्त्री चेतना, स्त्री मुक्ति में एक आन्दोलन बनकर प्रकट हुई है जिससे स्त्रियों में अधिकार बोध की भावना ने जन्म लिया है। आज स्त्री अपने अधिकारों के साथ–साथ अपने पारिवारिक दायित्वों का भी पूर्ण निर्वहन कर रही है।

किसी भी युग विशेष का साहित्य तात्कालिक समाज का दर्पण होता है। ये साहित्य ही उस युग की सामाजिक, राजनैतिक व धार्मिक स्थिति का प्रतिबिंब होता है। संसार के कर्मक्षेत्र में जीवन व्यतीत करने के लिए स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे के अनिवार्य अंग हैं। यथार्थ और कल्पना में भी स्त्री का साहचर्य पुरूष के लिए सुखद अनुभूतियों का स्रोत रहा है। इन्हीं सुखद अनुभूतियों का कल्पनाशील चित्रण हिन्दी साहित्य में प्रत्येक काल के कवियों ने अपनी लेखनी द्वारा किया है।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल धार्मिक उपदेशों एवं वीरगाथाओं के रूप में लिखा गया था। इस काल में शासकों एवं उनके दरबारी कवियों द्वारा नारी के कामिनी एवं वीरांगना रूप का चित्रण कवियों की सामान्य शैली बन गया था। स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व की आभा इस काल में कहीं भी दिखाई नहीं देती है। आदिकाल में समाज पूर्णत: रूढ़ियों और परम्पराओं पर आधारित था। इस काल में स्त्री के सौंदर्य का जो चित्रण किया जाता था वह चित्रण स्वस्थ मनोवृति का परिचायक नहीं था। इस युग का धार्मिक काव्य भी स्त्री के प्रति उदार नहीं था। इस काल में जैन आचार्यों एवं सिद्धों द्वारा लिखे गए धार्मिक काव्य में स्त्री के प्रति विरक्ति का भाव मुखरित हुआ है। इसमें स्त्री को पुरुष के समक्ष किसी न किसी दृष्ट से हेय और तुच्छ बताया गया है।

आदिकाल के साहित्य में स्त्रियों में विषय वासना के भावों के ठीक विपरीत वीरोचित विशेषणों (वीरमाता, वीरपत्नी आदि) का प्रयोग किया गया है। लेकिन रासो ग्रंथों में नारियों को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त नही हुआ।

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल भी राजनीतिक दृष्टि से विक्षोभ और संक्रान्ति का काल है। इस काल में एक ओर स्त्री उदात्त, आदर्श तथा आराध्य देवताओं की संगिनी के रुप में सम्मानित हुई है, तो दूसरी ओर सामान्य स्त्री के रुप में वह निंदा और उपेक्षा की पात्र भी रही है।

रीतिकाल के कवियों ने स्त्री के श्रृंगार रुप को ज्यादा महत्व दिया। इस युग में एक ओर बिहारी जैसे सूक्ष्मदर्शी कवि स्त्री सौंदर्य का सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप चित्रित कर रहे थे तो दूसरी और देव, घनानंद, पद्माकर की प्रतिभा भी स्त्री चित्रण को समेटे हुए थी। इन कवियों का स्त्री के प्रति दृष्टिकोण हमेशा सामंती ही रहा, जिससे वह समाज की इकाई न बनकर जीवन का एक उपकरण मात्र ही बनी रही।

हिंदी साहित्य में नवीन युग की नवीन चेतना के बीज आधुनिक काल में पाए जाते हैं, जिसका प्रमुख कारण अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार प्रसार था। देश में इस समय जातिगत भेदभाव, छुआछूत, बाल विवाह, सती प्रथा, स्त्री बहिष्कार इत्यादि के कारण समाज की प्रगति अवरुद्ध हो गई थी। लेकिन इसी समय युगों से उपेक्षिता, निंदनीया मानी जाने वाली स्त्री को भी पहली बार इस सुधारवादी वातावरण में कवियों की संवेदनशीलता का स्पर्श पाने का अवसर प्राप्त हुआ। इन कवियों ने स्त्री विषयक दृष्टिकोण में उदारता लाने का बहुत प्रयास किया। कवियों ने स्त्रियों की समता का उद्घोष इस प्रकार किया कि समाज में स्त्री विषयक एक नई धारणा ही प्रकट हो गई। भारतेंदु युग के कवियों में रीति एवं श्रृंगार के संकीर्ण घेरे से स्त्री को मुक्त कर

उसके उन्नति का आधार प्रदान किया योग पुरुष भारतेंदु जी ने स्त्री के प्रति पुरुष के दृष्टिकोण को बदलने का प्रयास किया उनके इस समग्र प्रयास में उनके सहयोगी कवियों का योगदान भी अविस्मरणीय है।

द्विवेदी युग साहित्यिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से नवजागरण का काल था। स्त्री- पुरुष की समानता, पीड़ितों के प्रति सहानुभूति एवं मानवीय आदर्शों की प्रतिष्ठा इस युग की मूल विशेषताएं रही हैं। इस युग के साहित्यकारों और कवियों ने अपनी रचनाओं में विलासितापूर्ण जीवन के चित्रण का परित्याग कर जनमानस को चारित्रिक दृढ़ता की ओर आकर्षित करने का प्रयास किया। इस युग में प्रथम बार नारीत्व की उच्च भावना का विकास हुआ। इस युग में स्त्री को उसके अतीत गौरव का स्मरण दिलाने तथा समाज में उसकी महत्ता प्रतिपादित करने में गुप्त जी का योगदान अविस्मरणीय है। उनका स्त्री संबंधित दृष्टिकोण यह है कि उन्होंने भारतीय नारी की दशा का चिंतन, वर्णन पश्चिमी चिंतन के बजाय भारतीय चिंतन की पृष्ठभूमि में किया है। भारतीय संस्कृति के प्रसारक गुप्तजी ने नारी के अबला रुप को इस प्रकार का गौरवान्वित किया है कि उनकी नारी का रूप मानव के लिए मानवीय तथा दानव के लिए दानवी समान है-

'मैं अबला हूं किंतु न अत्याचार सहूंगी,
तुम दानव के लिए चंडिका बनी रहूंगी।'

छायावाद में स्त्री पुरुष के बीच समानता का भाव पैदा हुआ साथ ही स्त्री के प्रति पुरुष का दृष्टिकोण भी बदला है, जिससे नारी को कविताओं में प्रेयसी के रूप में ऊंचा स्थान मिला। डॉ नामवर सिंह ने संबंध में अपना मत प्रकट किया है कि 'नारी की दुर्बलताओं को छायावादी कवियों ने साहस के साथ कहा और जिन बातों को अब तक लोकसमाज के भय से छुपाया जाता था, उन्हें भी छायावादी कवियों ने खोल कर रख दिया।'[9] नारी के प्रति छायावादी कवियों का दृष्टिकोण ना तो भक्तिकालीन संत कवियों के भांति अनादर का है और ना ही आदिकालीन और रीतिकालीन कवियों की भांति भोग विलास का, अपितु नारी के प्रति इन कवियों का दृष्टिकोण स्वच्छंद है। इसी स्वच्छंद रूप का चित्रण करने में कवियों ने प्रकृति के रूप का नारी के चित्रण में सहारा लिया है। इन कवियों ने प्रकृति को नारी के रूप में देखा है। छायावादी काव्य में नारी के प्रेम की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनका प्रेम एक ओर जहां वासनाहीन था वहीं विवेक से परिपूर्ण भी था।

छायावादोत्तर काल में नारी विषयक दृष्टिकोण को ऊर्जा प्रदान करने वाले कवि बालकृष्ण शर्मा नवीन राष्ट्र प्रेम और सहृदयता की अद्भुत आगार थे। कवि नवीन की दृष्टि में वंदनीया नारी को वासना के गर्त में डुबोने की इच्छा रखने वाले तथा नारी निंदा को धर्म मानने वाले व्यक्ति हेय हैं वे ऐसे लोगों को धिक्कारते हुए कहते हैं कि ऐसे मानव अधम एवं राक्षस के समान हैं -

'जो नारी में कामुकता ही देखें, वे भी क्या मानव हैं?
वे तो हैं बस चांडाल अधम, वे तो बस पूरे दानव हैं।'8

हिंदी साहित्य में कवि माखनलाल चतुर्वेदी को एक भारतीय आत्मा की उपाधि से विभूषित किया गया है। कवि का नारी विषयक दृष्टिकोण बड़ा उदात्त है। राष्ट्रकवि ने देश की अखंडता व एकता की रक्षा हेतु नर के साथ नारी को भी अपना योगदान देने के लिए प्रेरित करते हुए कहा है कि आज की नारी भी राष्ट्र रक्षा हेतु नागिन के समान दुश्मनों पर फूंकार मारती है-

'अब नरों में नारियां हों बलशाली।
नाग सी फुंकारती हो कोटि भुजा मतवाली।'

छायावादोत्तर काल में रामधारी सिंह दिनकर ऐसे कवि हैं जिन्होंने एक ओर राष्ट्रीय भाव धारा में डूबकर क्रांति के स्वरों को अभिव्यक्ति दी तो दूसरी ओर छायावादी मर्यादित सौंदर्य और प्रेम के गीत गाए। उनकी अनेक कविताओं में नारी का आदर्श एवं दैदीप्यमान रुप प्रकट हुआ है। कवि ने रश्मिरथी में अपनी पीड़ा को इन शब्दों में पिरोया है-

' बेटा, धरती पर बड़ी दीन है नारी,
अबला होती सचमुच, योशिता कुमारी।'[9]

प्रगतिशील विचारकों की जो विचारधारा राजनीतिक क्षेत्र में साम्यवाद, सामाजिक क्षेत्र में समाजवाद और दर्शन के क्षेत्र में द्वंदात्मक भौतिकवाद के नाम से जानी जाती है वही विचारधारा आधुनिक हिंदी साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद के नाम से जानी जाती है। प्रगतिवादी कवियों की दृष्टि में नारी भी मजदूर और किसान के समान शोषित वर्ग के अन्तर्गत आती है। उनकी नारी युग युग से सामंतवाद की जेल में पुरुषों की बेड़ियों में बंधी हुई है। पशु के समान घरेलू बंधनों में जकड़ी नारी की मुक्ति की इच्छा को प्रगतिवादी कवि पंत इस प्रकार व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि-

'मुक्त करो नारी को मानव, चिर बंदिनी नारी को,
युग युग की बर्बर कारा से, जननी सखी प्यारी को।'[10]

छायावादोत्तार काल में अन्य कवियों की भांति कवि निराला ने भी मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाया है। नारी के स्वाधीनता को कवि निराला ने आवश्यक माना है। उनके अनुसार स्त्री एवं पुरुष मानव शरीर के दो हाथों के समान हैं लेकिन हमारे देश के लोग आधे हाथों से काम करते हैं। उनका मानना है कि 'आज हमारे आधे हाथ निष्क्रिय हैं, जब स्त्रियों के भी हाथ काम में लग जाएंगे, कार्य की सफलता तभी हमें प्राप्त होगी।'[11]

हिंदी साहित्य में द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात सन 1943 में अज्ञेय द्वारा संपादित तार सप्तक से प्रयोगवाद का आरंभ माना जाता है। हिंदी प्रयोगवाद पर फ्रायड, एडलर, युंग आदि पश्चिमी मनोवैज्ञानिकों का प्रभाव रहा, जिसके कारण यौन-कुंठाओं, विभीषिकाओं का खुला चित्रण इन कविताओं में किया गया। प्रयोगवाद के प्रमुख कवि अज्ञेय ने नर-नारी के आकर्षण- विकर्षण को अपनी रचनाओं में वाणी दी है। असाधारणता से युक्त पुरुष की अधीरता को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है -

'कहो कौन है जिसको है मेरी परवाह,
जिसके उर में मेरी कृतियां जगा सके उत्साह।।'[12]

इस प्रकार समग्र रूप से देखा जाए तो हम पाते हैं कि आज समस्त नारी समाज ना तो केवल देवी के पद पर अधिष्ठित किया जा सकता है और न केवल दृष्टा कहा जा सकता है अपितु वर्तमान समाज में हमें नारी भिन्न-भिन्न रूपों में दिखाई देती है। वर्तमान नारी, समकालीन परिवेश के अनुरूप आज प्रत्येक दायित्व को पूर्ण करने में सक्षम दिख रही है। कुछ अपवादों को छोड़कर आज नारी की स्थिति में काफी सकारात्मक परिवर्तन आ गया है। वह हर क्षेत्र में पुरुषों के कदम से कदम मिलाकर चलती दिखाई देती है। अब वह घर के कार्यों में ही व्यस्त ना होकर नित्य कुछ ना कुछ रचनात्मक कार्य में भाग लेते हुए दृष्टिगोचर होती है जो उसी वर्तमान चेतना का ऊर्जावान रूप है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मैथिलीशरण गुप्त: भारत भारती (अतीत खण्ड, आर्य स्त्रियां) , साहित्य सदन प्रकाशन, झांसी, पृष्ठ संख्या 11
2. कमलेश कटारिया : नारी जीवनय वैदिक काल से आजतक, निकिता

प्रकाशन गृह, 2021, पृष्ठ संख्या 118
3. जयशंकर प्रसाद: कामायनी (लज्जा सर्ग), लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 106
4. जयशंकर प्रसाद: कामायनी (लज्जा सर्ग), लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 104
5. गणपत राम शर्मा: अधिगम शिक्षण और विकास के मनो सामाजिक आधार, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर,2020 , पृष्ठ संख्या 73
6. श्रीमद् भगवत गीता, पृष्ठ 3/42
7. मैथिलीशरण गुप्त: सैरंध्री, नेशनल बुक ट्रस्ट,2001, पृष्ठ संख्या 20
8. डॉ. नामवर सिंह, आधुनिक हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियां, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद,1962, पृष्ठ संख्या 17
9. बाल कृष्ण शर्मा: हम विषपायी जनम के, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 1964, पृष्ठ संख्या 26
10. रामधारी सिंह दिनकर: रश्मिरथी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1952, पृष्ठ संख्या 69
11. सुमित्रा नंदन पंत: ग्राम्या, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2001(नवीन संस्करण)
12. राम विलास शर्मा: निराला की साहित्य साधना, राजकमल प्रकाशन 2011
13. सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय: चिंता, प्रतीक प्रकाशन, दिल्ली 1941

****